लहर भर समय

लहर भर समय

संजीव मिश्र

अनुक्रम

खत्म होने से पहले

पूरा सफर दोबारा

ख़त्म होने से पहले

अह की धूल

अनुभव के दर्पण पर
इतनी जमी
अह की धूल
कवि
कविता से बड़ा
हो गया
कविता करना भूल।

अन्त

सिद्ध तो अन्त में ही होगा
जो भी हो
सिद्धान्त केवल मेरा
मेरे अन्त में।

जब तक जिन्दा हूँ
कायम किस पर रहूँ?

इन्द्रधनुप के अन्त मे

जिरह बख्तर दमकते थे
दिल मगर उनके अधेरे से घिरे
निस्पद थे।
इन्द्रधनु के अन्त पर वे
सिर झुकाए
पात्र सोने से भरा ले हाथ मे
हतप्रभ खड़े
अब देखते हैं राह उसकी
दूसरा जो
इन्द्रधनु के शुरू होने की दिशा से
आएगा
शायद बचा ले जाएगा कुछ रग
थोड़ी रोशनी दिल म
अगर
वह चाहता होगा नहीं
यह पात्र साने स भरा।

इक्कीसवीं सदी

मुश्किल होगा मन के याद उगेगा सौ
कहने लिखने की आदत छोड़ना।
यूँ परेशान सा पहुँचूंगा मैं
इक्कीसवीं सदी में।

चालीसवें साल में दुनिया से विरक्त
युवा सपने चमकते चेहरों की नफरत झेलता
एन्टीडिप्रेसन्ट गोलियों की जानकारी से लैस
सेरेब्रल एट्रॉफी से बचने के उपाय पढ़ने वाला
कुछ क्या काफी ज्यादा रक्तचाप के साथ
मैं पहुँचूंगा इक्कीसवीं सदी में।

बीसवीं सदी के सपनों के नशे के
सिर तोड़ हैंगओवर को ढोता हुआ।

तब कौन जानेगा जो अब तक हवा में हैं
तुम्हारे मेरे प्यार के भुलाए जाते चर्चे।
और कि मुझसे भी शायद कभी
किसी जवान आदमी को ईर्ष्या होती थी।

अपने इर्द गिर्द घट घट में व्याप्त
ब्रह्म के दूषिततम अंशों का
निर्दोष साक्षात्कार करता
एक पराजित साधक पिटा हुआ
बीतते हुए समय से पराजित
पहुँचूंगा मैं
इक्कीसवीं सदी में।

परम्परा

जड़ बिखरी नजर आएँगी आकाश में
हालांकि कानूनन य असम्भव होगा।
हर वोट हमेशा की तरह पड़ेगा जमीन के पक्ष में।

लेकिन जड़े आसमान में ही फैलती नजर आएँगी
क्योंकि तमाम बहुमत के बावजूद
कोई उपाय नहीं बचेगा
सड़े हुए दलदल को ठोस जमीन कहने का।

फिर देखना ही पड़ेगा कि पानी
जिसका सहज धर्म है बहना
किस दिशा में जा रहा है।

अच्छा है बँधे जितने ज्यादा बाँध।
रुके उतना ही प्रवाह
टूटे उतनी ही जल्दी तटबन्ध।

देखो,
अब तो रुके हुए
सपनों से भी
सड़ाँध आने लगी है।

मुटल्लो का गाना

घड़ी कहाँ खाई
न जाने क्या वक्त हो गया
यहीं तो थी घड़ी
लगातार चलती टिक टिक

तो क्या है?
तुम्हें मिल भी जाए
तो रोक लोगे क्या?

अब क्या करें
अपनी ही जवानी का
विद्रूप स्वाग कब तक खेलें
मच पर

कहाँ है मुटल्लो?
गा दे अपना गाना
तो छुट्टी मिले
लेकिन कहा है मुटल्लो?

टुच्चा के गले बैठते जा रहे है
तार सप्तक मे अपनी चीखों को दोहराते हुए
न घड़ी रुकती है न कलेटर
अब मुटल्लो गाकर मुक्ति दे
होए यवनिका पतन
(नेपथ्य मे हाहाकार के बाद)

परदे की डोरी लिपटी है गले में
लगातार कसती
ये जाने कौन बता गया कि
आखिर में गाएगी
सबसे उत्तम गीत
है कहाँ वो ?

हम ही होते
मरते चाहे गा कर
परदा तो गिरता
छुट्टी तो मिलती
गले की फासी
मुटल्लो का गाना
घड़ी जाने कहाँ खो गई
वक्त बीते चला जा रहा है।

लड़ाई

अक्सर जले थे हमारे हाथ अंधेरे में
महसूस हुई थी तपिश भी त्वचा पर—
मानो धूप की
हम जूझते रहे लगातार
धूप और आग के लिए, रोशनी के लिए।

टटोलते थे दीवारों को
जो बनाई थी हमारे पिताओं ने
और सिखाया था हमें कि दीवारें ही
हमारा धर्म है।

पिताओं की पीढ़ी चली गई सभी दीवारों के परे
और ले गई अपने साथ वे कारण
जिनसे उन्होंने तय पाया था दीवारें बनाना।
फिर यह तो लगा हमें कि जो धर्म हमने निभाया
वही कारण है अंधेरे का
दीवारों ने ही रोके हैं उस पार—धूप और आग

हम टकराए दीवारों से सर फोड़ते रहे
उलझते रहे आपस में
कि अंधेरे का सामना करने के लिए
कितनी जरूरी है रोशनी
और
क्या सचमुच जरूरी है गिराना
पिताओं की उठाई हुई दीवारें?

इतना जान गए थे हम
कि हमें लड़ना है रोशनी के लिए
टकराना है दीवारों से
उलझना है आपस में
होना है लहूलुहान
बताया गया था हमें
कि एक दिन हमें मिलेगी धूप और आग की रोशनी

हमने बहुत कुछ खोया सहा
रोशनी के लिए लड़ते हुए।
हालांकि
अक्सर जले थे हमारे हाथ
महसूस हुई थी तपिश भी त्वचा पर—
मानो धूप की।
लेकिन, अंधेरा तो था ही,
यानी न तो धूप थी हमारे बीच न आग

और
जाने से पहले
पिताओं ने यह भी नहीं बताया था हमें
कि क्यों हमारे जन्मते ही
उन्होंने बांध दी थीं
पट्टियाँ हमारी आँखों पर

भरम

लहरो!
न करो रेत को
दरिया के मुकाबिल

बारिश मे
भरम टूटे हैं
हर बार यहाँ पर

अवसाद गान–1

यह आखिरी मुकाम है, पराजय के बाद का।
दुश्मनों की सरहदों के परे, हम जा रहे हैं
झूलते चिथड़े, पराजित चेहरे,
जो लड़े और हार गए।

हमें घृणा से देखते हैं वे, हँसते है
शक्तिशाली विजेता,
इस जमीन पर चलता है उनका राज
उनकी भाषा मे उनका आदेश
कभी वे हम पर दया भी करते हैं

हम जाते हैं सिर झुकाए
कभी लगता [illegible] कि हम [illegible]
वे छीन [illegible] हमारी बेचारगियाँ
हार मानने से पहले टूट चुकी थी हमारी रीढ़।
और हमारी बेचारगियाँ उनके [illegible]
जिन्होंने [illegible] उनके [illegible] बनी थी
बेचारगियाँ हमारे [illegible] के लिए नहीं।

हमारे लिए कभी कुछ भी नहीं था
तो जब उत्थान चाहा हम रुके,
हम रुकने लगे उर्वी जमीन पर।

कहीं जाना नहीं है अब जहाँ हो प्राण
यहीं है आखिरी मुकाम
जहाँ तय है कि हम क्या हैं,
वे क्या।

और वे अनिवार्य हैं हमेशा,
हमारे त्रास से तृप्त होता जब एक जाएगा
दूसरा आता ही होगा पीछे पीछे।

व्यर्थ है अब नजरें उठाना
रगते रहना है और भूलना
लगातार उन सपनों को
जिन्होंने हम लम्बे समय तक
लड़ाए रखा था।

अवसाद गान–2

हम करते हैं नफरत से भरी
करारी चोट
हमारी छेनियाँ हैं पत्थरों पर
उकेरते हैं उनके नाम
उनकी विजय के इस चिरस्थायी
स्मृति स्तम्भ के लिए।

हमारे भी नाम खुदे हैं
हमारे पावों में पड़ी बेड़ियों पर
हम खुद भूलने लगे हैं उन्हें

वे सज्जन सत्पुरुष हैं
मुस्कुराते हैं बोलने में विनम्र,
कभी भाँजते हैं तलवार
हमें अपनी औकात बताने के लिए
हम 'नीच और कमीनों' को।

उनके इरादों पर सवाल उठाने का
सवाल ही नहीं है,
वे तय कर चुके हैं
कि सच क्या है।

और हम उकेरते हैं पत्थरों पर
उनका सच उनके नाम के साथ
कि वे ताकतवर हैं
सफल हैं
पराजितों की तरह
व्यर्थ भावुक नहीं।

अवसाद गान–3

हम शर्मिन्दा नहीं थे
गुँजाइश ही नहीं थी शर्म की
बेकार था शर्मिन्दा होना।

हमने सब नए सिरे से समझाया
अपने नजरिये से
कि जैसे जो सब हार जाए
वही सच्चा विजेता है।

और हर छीन ली गई चीज को
बताया हमने अपना अवदान

और जिन्होंने हम पर दया की
और जो हम पर हँसे
हमने उन पर तरस खाया।

और हम हँसे
सपने देखने वालों पर
जो सपने देख रहे थे
जैसे कभी हम देखते थे।

हमने कभी नहीं स्वीकारा था
उन टूटे सपनों का अस्तित्व
तो शर्मिन्दा होने जैसा
कुछ भी नहीं था।

हमारे पास नहीं बचे थे कोई विकल्प
तो हम भ्रमित, हारे, लाचार लेकिन
जिद पर अड़े थे कि
सही हम ही हैं।

ये हमारा फैसला नहीं
हमारी मजबूरी थी
हमारी आखिरी यातना
इकलौती पीड़ा
सब कुछ के बावजूद
कहीं बाकी रहने की एक अदम्य लालसा!

ईश्वर

कैंसर के इलाज में रेडियेशन थेरपी के दौरान
जरूरी है कि मरीज स्थिर रहे हिले डुले नहीं।
बड़े तो समझते हैं गलत रेडियेशन का खतरा
पड़े रहते हैं दम साधे
पर बच्चे तो हिलते डुलते हैं ही
चाहे कितने भी बीमार हों, कैंसर के मरीज भी चाहे
लिहाजा बच्चों को रेडियेशन से पहले बाँध दिया जाता है
कस कर एक क्रास के आकार के फ्रेम पर
ताकि वह हिले नहीं।

पहले दो चार दिन तो रोता चीखता है बच्चा
फिर कमजोरी और बीमारी की तरह
इस क्रास पर रोज रोज बँधने को भी
स्वीकार लेता है
सूनी हताश आखों से रोज उतर कर बाप की गोद से
बँध जाता है क्रास पर तीन साल का बच्चा।

मुँह फेर कर रोता है बाप
मेरे किस पाप की सजा क्या दे रहा है मेरे बेटे को
कहता है उससे
जिसने खुद अपने पापा के लिए
अपने बेटे को क्रास पर चढ़ जाने दिया था।

मर्जी है आपकी

सर्दी में दोपहर को खिली है
साफ गुनगुनी धूप।

बहुत कुछ हो सकता है
इस साफ गुनगुनी धूप में।
बैठ कर लिखी जा सकती है कविता।
जलाए जा सकते हैं दूसरों के घर।
पढ़ी जा सकती है कोई अच्छी किताब।
पटरी से उतारी जा सकती है रेल।
देखते रहा जा सकता है
किसी की प्यार भरी आखों में।
या छोटे छोटे बच्चों को दगा करके
मार डाला जा सकता है।

जिन्दगी को किया जा सकता है
इस धूप के उजास से उजला
या अपने पास के अन्धेरो से
किया जा सकता है धूप को मैला।

धूप को ढलते देख कर भी
माना जा सकता है शाम से ही
कि रात तो अनिवार्य है।
या अन्धेरे में भी जगाये रखा
जा सकता है धूप का एक हिस्सा
कल के लिए।

हार जीत

एक तो ये कि अखाड़े में
कस कर जमा लिए जाएँ अपने पाँव
और विरोधी की तमाम टक्करें झेली जाएँ
अंगद सा कर उसके तमाम पैंतरे नाकाम करके
यूँ बोला जाए हल्ला कि उसके पाँव उखड़ जाएँ
और वो हो जाए चारों खाने चित्त
आपके डिगे नहीं पाँव, जीत आपकी हो
मिलें तमगे वाह वाही जय जयकार।

या फिर ये कि पाँव टिके नहीं कहीं भी बेबात
कदम दर कदम घूमते फिरें
जैसे सुबह की सैर
सड़कों मोहल्ला बाग बगीचा, जंगल पर्वत
तमाम सृष्टि के बीच से गुजरते
कभी तेज कभी धीमे
कभी ठिठकते बच्चों से खेलने या बुजुर्गों के
तजुर्बे सुनने के लिए
कभी नए सिरे से देखने के लिए
रोज ही दिखाई देने वाली रेलगाड़ी को
बिना कोई हिसाब रखे कि
कौन पीछे छूटा और कौन पीछे से आकर
आगे निकल गया।

पाँव जमाकर अखाड़ा फतह करना
मामूली बात नहीं
हर कोई नहीं जीतता तमगे

लेकिन नजरिया है अपना अपना
हर सफलता अखाड़े में ही तो नहीं मिलती
और खास बात यह भी है कि
अखाड़े के बाहर
अक्सर कोई भी पराजित नहीं होता है।

लौट कर कवि

लौट कर देखा कवि ने
कि कम हो गई थी
हरियाली के हिस्से की जमीन।
बहुत कम
हो गया था
गौरैया के हिस्से का आसमान।
आसमान की ललाई
सुबह शाम
धुंधला गई थी।

उदासी से और अधिक डरने लगे थे लोग
और अधिक डूबते हुए
उदासी में।
बेकार होते जा रहे थे लगातार
कवि की अनुपस्थिति में
उसके औजार

कम से कम
एक उम्मीद तो
हो ही रही थी बेजान।

लेकिन
सब कुछ खत्म होने से
पहले ही
हमेशा की तरह
कवि लौट आया था।

कौन पूछे

खल्क के बाद
भी
अकेला है।

कौन पूछे
उसे
यहाँ
आखिर

पूरा सफर दोबारा

अपने होने की आदत

अजब पड़ी है
जगल की पगडडी जैसी
ये अपने होने की आदत

घने झाड़ झखाड़, रूँख, हरियाली, देते
आवाजे अपने होने से हटो भी जरा
वन में धँसो
मुक्त हो
भटको भी थोड़ा सा
पगडडी को छोड़ो
जगल होकर देखो

चार कदम चलते ही
थरथर पाँव काँपते
जगल होने के सुख का स्पर्श शुरू
होते ही जाने कैसा सा भय
गात घेरता

ये अनजान सुखों का भय भी
अच्छी आफत

लौट लौट आते
कदमों में
अजब बँधी है
ये अपने होन की आदत।

पतझर

हरियाली क
हमारा चेहरा है
पतझर की
एक ही पहचान है।

समूची पृथ्वी को लपेटे
पतझर के करोड़ों झरे सूखे
पत्तों की चरमराहट म
एक पेड़ भर
हरियाली की याद
जो खास उसी पर
खिली थी गये मौसम मे।

अभिनय

जगमगाती रोशनी मे मच पर
सब देखते मुझको
सदा वह वीर नायक
तालियाँ जिसके लिए हर बार है सबकी
मगर हर बार
अतिम दृश्य के पश्चात्
बुझती रोशनी गिरती यवनिका
थरथराती काँपती टाँगे लिए
मै सिर झुकाए डूबता हूँ
उसी सपने में
कि मैं कमजोर अभिनेता
कभी बन जाऊँगा सचमुच वही
जो रोज सबके सामने
बन कर दिखाता हूँ।

याद

अन्धेरे में
दूर
रोशनी म नहाया मदिर।

जैसे
घोर निराशा क बीच
बचपन के किसी
देवता की याद।

तीर्थ

शिखर की आश्वस्ति मे बँधा
हजारों आवाजा म गूँजता
आकाश भर दु ख
घाटी भर आदिम पृथ्वी से निकला हुआ।

वहाँ सभव नहीं था छाँटना
कि कितना दु ख अपना है।
खाली हाकर लौटते हुए
बस इतना भर बाकी था भीतर
कि साथ में दर्द कर रहे है
और कितने ही
हजारों अनजान पाँव।
अनादि पर्वत की शिलाओ पर
अनन्त यात्रा के बीच
एक निरन्तर शून्य था
जिसमें पूरी तरह सभव थी
एक नयी सृष्टि—करोड़ो युगो की।
काल के दोनों छोर वहीं पर
थे परस्पर उलझते
दस दिशाआ को समेटे रिक्तता के
एक छोटे बिन्दु में।

मुक्ति थी वह साथ चलने से मिली थी।

देवता के दर्शनों मे नहीं
तीरथ
यात्रा स लौटने म था।

जानना

डूबना
यदि जानना है
तो
छुआ है अभी मैंने
सतह को
बस उँगलियों के छोर से।

मालखाना

जहाँ तक बन पड़ा
सभाल कर रखा है
कहीं कुछ सूझा तो
अपनी अकल से यहाँ वहाँ
सँवारा सजाया भी है
न पसद आये तो माफ करना
सामान आपका है

आप ही दे गये थे रखने को
या शायद कोई और समला गया था
आपको देने के लिए।
सारा तो याद नहीं अब देखिये कितना कुछ तो
जमा हो गया है अगड़म बगड़म
जो सहेजे हूँ
समालता सँवारता और
लगातार छाँटता हुआ कि
कुछ रह न जाये जो आपका है
आपके लिए जरूरी।

ले जा सकता नहीं,
तो चुनता हूँ जैसी भी अकल बन पड़े
रखता हूँ काउन्टर पर अपने अनुमान से
पता नहीं आप किसे अपना मानें
ले जाएँ उठा कर, तभी कुछ पता चले
कि मेरे पास वो उतना था जो
आपका था।

ड्यूटी का वक्त तय नहीं है तभी तो
इतना घबराया हूँ
यूँ लौटूँगा घर ही लेकिन
काम जो आपका है वो जितना निपट सके
निपटा दूँ,
फिर और भी बहुत हैं
ड्यूटी पर मुझ जैसे
कोई गलती हो तो माफ करना
जानबूझ कर कौन बिगाड़ता है
अपना रिकार्ड।

वैसे इस सब माल मत्ते में मेरा क्या है
मेरा सामान तो किसी और को
सभालना है
न जानूँगा उसे कभी,
न वो जानेगा कि ये ये चीजें जिसकी हैं
उसका एक खास नाम था किसी वक्त में।

भोर

नित्य क्रम जब बन गया हो
देर से उठना
किसी दिन अलस्सुबह ही
आँख खुलने पर
बहुत कस कर लिपटता
मन बदन से
भोर का जादू

तुम्हारा ध्यान जो
सोता नहीं है कभी भी
कुछ और जग जाता।

अभी सूरज
उगेगा। एक पंछी
ने करी शुरूआत कलरव की
सुना।

बीतना

ठिठक कर बीच में
कुछ सोचता हूँ।

यही गलती
हमेशा कर रहा हूँ।

मैं लम्हा हूँ
मुझे रुकना मना है

यही पहचानने में
बीतता हूँ।

नोक

बारह दर्जन आलपिनें।
गिरी किसी ठेले से
जाने थैले से
अब पड़ी सड़क पर बिखरी
तीखी चमकदार
बेकार।

नहीं सड़क पर कोई कागज
जिसे कर नत्थी
ना कोई उँगली जिसके
नाखूनों का
मैल साफ करना हो।

केवल नाली है
जिसमें जा गिरना तय है
आलपिना का देर सबेर।

जग लगेगी आलपिनों में
तीखी नोंकें धीमे धीमे
हो जाएँगी बहुत भोथरी
कोई नहीं देखेगा इनकी
चमक—नोंक जो
अभी दीखती है इन
बारह दर्जन आलपिनों में।

देरी

हरियाली के बीच बिताकर उम्र
दिखी जब पहली बार अचानक
सुन्दरता पत्ती की
पतझर का पहला दिन था वह
वह पतझर की
पहली पत्ती।

जब अपने होने से बाहर
होकर देखा
आती जाती साँसों का
कौतुक जादूई
वह था अंतिम क्षण प्राणों का।

प्यासे बहते रहे उम्र भर
फिर जाना ये पानी ही तो
प्यास बुझाता है
सूखी थी नदी वहीं पर।

जिस छवि की तलाश में भटके सदा
हर कदम आस पास थी
उसको जब पहचाना तब तक
बीत चुका था वक्त प्यार का।

मंजर

ये सूरते सुखन है
कि
नदिया की
प्यास है
धीमी कराह
भीगते जंगल के पास है।

उसको भी
याद आया
मगर
कोई और है।
बारिश की
पहली शाम का
मंजर उदास है।

जहाँ मैं नहीं हूँ

सच

खुद को सदा बीच मे रख कर
देख न पाये सच्ची सूरत।

अपनी ही काली परछाईं
ने जो रचा झूठ आँखो मे
सच्चाई को ढका उसी से
सच्चे को झूठा बतलाया।

सच को सच कहने का साहस
उस छवि मे मिलता था लेकिन
उस तक पहुँच न पायीं नजर
खुद को सदा बीच में रख कर।

ध्यान रहे

इश्क मजाजी इश्क हकीकी हो जाता है ध्यान रहे,
चलते चलते अक्सर रस्ता खो जाता है ध्यान रहे।

देख मुकद्दर की अंगड़ाई बगटुट मत दौड़ो अक्सर
करवट लेकर थका मुसाफिर सो जाता है ध्यान रहे।

प्यार का रस्ता प्यारा तो है जाना चाहो तो जाओ
लेकिन नहीं लौट कर आता जो जाता है ध्यान रहे

जीत का सेहरा सिर पर बाँधा गटर्गी मरक घर लौटो
मगर पास से अपने भी कुछ तो जाता है ध्यान रहे।

करीब

बातचीत के बीच
सुनते हुए तुम्हारी बात
नहीं देखता रहा था मैं
तुम्हारे होंठ, चेहरा आँखे
जो वैसे भी मेरी स्मृति मे बसे
मेरे शब्दों से झाँकने को
हमेशा आतुर रहते हैं।

मै देखता रहा था
पैरो के पास उगा एक छोटा सा पौधा,
पास में पड़ा एक कच्चा अधखाया अमरूद
छोटा सा पत्थर जो
किसी पुरानी चट्टान की याद दिला रहा था
झाड़ियो में दोड़ती गिलहरी
ऊपर पेड़ की पत्तियों के बीच से
दिखाई देता आसमान,
और ऐसी बहुत सी चीजे
जो अक्सर नजरों से बची रह जाती हैं।

तुम्हारे करीब रहते
मुझे ऐसे ही घेरने लगती है
बहुत सी कविताएँ
चाह वे सब
सीधे सीधे तुम्हारे ही बारे में नहीं होतीं।

वो अब

अजनबी सा
मुझसे कतराता है वो
अब हर जगह।

मेरी याद
झूठ कर जाता है
वो अब हर जगह।

अपनी तीरंदाज फितरत
पर उसे यूँ नाज है

घाव भर दिल के
दिखाता है वो
अब हर जगह।

वजूद

हद ए हस्ती का उफक
लाँघता हुआ
आऊँ।
तुम्हारे ख्वाब में
मैं जागता हुआ आऊँ।

मेरे वजूद का पैकर
मुकाम हो जाए
तेरी नजर से
उसे देखता हुआ
आऊँ।

एक नाम में बँधी

इस काया की पीड़ित स्मृतियों में लिपटी
कमजोर लालसाओं की गठरी
अनचाहे पड़ी
परिभाषित सम्बन्धों के बीच कहीं
अनचाही।
बिखर जाने दो
जहाँ तक बिखर कर खो सके
रेशा रेशा
न शक्ल रहे
न परछाई
बाकी न बचे
नामो निशा कोई।

बस रहे एक सकल्प तुम्हारा
सम्बोधन का
तुममें ही
जैसे तुम खुद हो
अपने भीतर

फिर मैं तो नहीं रहूँगा
कहीं भी दृष्टि में
लेकिन मेरे सिवा
कुछ भी और कहाँ सभव होगा
समूची सृष्टि में।

द्वैत

यह लुभावना रूप
तेरे
मन का मुझको
लोभी कर कर जाता है कितना
तुच्छ भरा जाता है मुझ मे
स्वार्थ
तुझे पाने की इच्छा
द्वेष जगाती, ईर्ष्या से भरती
मेरा मन, नहीं
ये नहीं तू
तू तो है मुक्ति मेरी
अर्थात्
रूप से परे, लोभ से मुक्त
मुक्ति मेरी है जो
वह तभी मिलेगी जब
इच्छा तुमको पाने की

लय हो जाये
तेरा ही स्वीकार
बचे मैं नहीं रहूँ जब
तुझसे प्रेरित शून्य
मुझे भर दे सस्मृति से,
करे पूर्ण
मै नहीं रहूँ
तू हो केवल
तेरे होने म सब कुछ हो
मै दसों दिशाओ म गूँजूँ
तेरी स्तुति सा, नामहीन
वह रूप दमकता
तेरे मन का
उसका ही आलोक भरे
मेरे अनन्त प्यासे मन को
सतृप्त करे
तू हो मुझमे, अपने म
होने दे मुझको, यह नहीं लालसा
काया की
मुझको मन से छू दे
अनन्त कर दे
तू भी हो सतत
अमर हो जाए दोनों
द्वैत मिटा कर।

तुम्हारे लिए

तुम्हारे लिए
मेरी मुट्ठी में
न तारे हैं न फूल
जरा से बीज हैं बस

इन्हें अपने सामने पड़ी
सूनी जमीन पर
उछाल दूँगा——किरनों सा
रोशनी की तरह।

एक दिन खिल उठेंगे
यहाँ पर सैकड़ों फूल
उन पर चमकेंगे सितारे
उन्हें कोई किसी के लिए
तोड़ेगा।

तब मैं
यही अनाकर्षक बीज
अपनी मुट्ठी में दबाए
कहीं और तुम्हारे नाम पर
सपने बिखेरने जा रहा होऊँगा।

वही

फिर वहीं लौटेंगे
शब्दों से परे
वहाँ झूठ सम्भव नहीं होगा
न देखना, छूना या
महसूस करना
जैसे यहाँ है।

फिर लौटेंगे वहीं
जानने के लिए
मुझको तुम्हें या ये कि
सदियों के आर पार इस वक्त में
मैं तुम्हारा पुनर्जन्म हूँ
तुम्हारे इसी जन्म का,
तुम्हें जानने की कोशिश में
जानना ही सम्भव है वहाँ
जैसे यहाँ नहीं है।

फिर लौटगे वहीं
क्योकि वहा लौटना एक बार जाने के
पहले ही सभव है।

वहीं तो लौटा जा सकता है
शब्द झूठ देखने सुनने, महसूस करने के पर
जहाँ पहले कभी न रहे हो
न गए हो, जहाँ एक बार हो चुके,
वहाँ लौटने लायक क्या रहा?

फिर लौटगे वही
बीतते हुए समय के पार
जहाँ बीतना सभव नहीं है
जैसे यहाँ है।

मृत्यु से आगे ले जाएगे हमे स्वप्न
एक सुन्दर शुरूआत ही हमेशा सभव है
जैसी यहाँ होनी मर चुकी है।

नींद की ओर लौटो
सपना को सभालते हुए
उन्हीं से होकर लौटगे वहाँ
जहाँ सपने झूठ नहीं होते
जैसे यहाँ होते है।

अकारण

यूँ ही अकारण
आ जाएगी मौत
आज शाम चार बजे
या शायद पचास साल बाद कभी।
रह जाएँगी अनकही
तुम स तमाम शिकायतें
कि तुम नहीं करती
जैसा मैं करता हूँ
तुमसे एकनिष्ठ प्यार
आज शाम चार बजे
और पचास साल बाद भी।

सवाल

क्या है वो भी
मेरे जैसा ?
ये सवाल
जैसा का तैसा।

इक
उदास सपने से जागा
मन
सहमा सहमा है
कैसा।

सागर भर रेत

एक निरन्तर काव्यक्रम

1 सीपो के खोल

बीतता है समय
बिना रुके चलती है
घड़ी की सूई

लगातार सड़कों पर
रुकती चलती गाड़ियों
खुलते बन्द होते बाजारों
पैदा होते मरते लोगों
प्लेटफार्मों को पहुँचती छोड़ती
भारतीय रेलवे की
पैसेंजर गाड़ियों
की तरह

लगातार
जगह बदलती रेत के

हवा म उड़ते दाना सी
जिस पर लिखता हूँ अपना नाम
मिटते हुए देखता हुआ

जानने का उत्सुक
कि विशाल बजर यह
मरुस्थल थार का
क्या सचमुच है
रेत म दबे
सीपा, शखो से झाकती
स्मृति
किसी महासागर की ?

हर बार
उड़ जाती है रेत
मिट जाता है नाम
कुछ तय कर पाने से पहले

●

फिर थक कर लौट आया
उसी सड़क पर
जिस पर आते जाते
बचपन से
बड़ा हो गया
बिना देखे उसका
बदलता रूप लगातार

जैसे बीत रहा हो समय
बहुत दूर तक
सीधे जाता हुआ

●

एक बार फिर
हँस दिए लोग

टीवी पर देखकर
मजाकिया हरकत
किसी मसखरे की

अखबार म फिर छपी
खबर हत्याकाड की
जिसमे जिक्र नही था
पुलिस के उस सिपाही का
जो घर की बस पकड़ने आया था
और गोलियाँ चलते ही
छिप गया था बैंच के नीचे
सभालता हुआ पगार के
सात सौ अड़तालीस रुपये अस्सी पैसे
दोहराता हुआ मन मे
अजनि पुत्र पवन सुत नामा
महावीर विक्रम बजरगी!!

नाचते हैं फिल्मी स्टेज पर
आदिवासी लिबास म
शहर के नचनिय

म्यूजियम म जमती है
मन्नाटे पर धूल
ढकती हुई
मेरा बीतता हुआ समय
मेरा अनपहचाना रेगिस्तान
मेरा मिटता हुआ नाम
क्या खो ही जाएँगी
स्मृतियाँ भी
यूँ ही

महासागर को ढूँढ़ना
जरूरी है
मुर्दा सीपो के

टूटे फूटे खोलो के बीच घिर
छोटे से शून्य में

2 सागर की स्मृति

पडित जी ने लाठी मारी
भगी के सिर
फाड़ा उसको
मारा उसको
राजा जी ने
सेठानी को
उठा मँगाया
अपने बिस्तर को गरमाया

मत्री जी ने
मुल्ला जी का
कतल कराया
पडित जी का नाम लगाया

कोतवाल ने पैसा खाया
रडी के भडुए से
उसको अभय दिलाया
मत्री का बिस्तर गरमाया

मुशी जी ने बही दबाई
रुपया आना, पाई
सब कुछ जोड़े
थोड़े रखे जेब में
सूरज के घोड़े अब
चले लबे मगरिब
अब सबको जाना घर था
पहले यह देश बड़ा सुन्दर था

●

भजन गत म
करत करत
हारी भार
कहाँ छुप गया
मागनचार

गजगामिनि, शशिनि
पीन पयाधर
क्षीण कटि, चम्पक वर्णा
आतुर
गोपिकाआ का
प्यारा ?
अरुण यह मधुमय देश हमारा

●

सागर इसक चरण पखारे
खारी लहरें लहर लहर कर
लहर पर लहर पर लहर पर लहर
बस खारापन ही
घेर रहा है
इस मथन म

देवोऽह
असुरोऽह
मैनाकोऽह
शेषोऽह
कुर्मोऽह
कालकूटोऽह
नीलकठाऽह
अमृत कौन हो गया तो ?

फिर मिलगे
अगले युग म

3 हवन

मनस कुंड म
अहोरात्र की समिधाओं को
जमा जगाई लौ
चेतन की

श्री गणेशाय नम

सभी देवता
इन्द्र, वरुण यम
अग्नि, सोम, उपादि
आएँ, स्वीकारें इन हविया को
नवग्रह शान्त रह

प्रगटे इस अग्निकुण्ड से
वह ज्योति पुरुष
जो दृष्टिवान हो

यह मिट्टी के घर, खेल खिलौने,
बाल सखा, बूढ़ी दादी,
नहीं, मैं नहीं, कहीं नहीं
स्वाहा।

यह राम, कृष्ण रावण, गोवर्धन,
नाग कालिया, प्रेत भूत,
परियाँ दानव
मै कही नहीं
स्वाहा।

यह सोनीलिस्टन बायाँ घूँसा क्ले का
यूरी गागरीन, वेताल, मैण्ड्रेक
हवलदार अब्दुल हमीद
स्वाहा।

यह चाँद सितारे, दुनिया की गालाई
जगल म गूँजी बदूक बाघ की खाल
बाल जासूसा की मडली,
यात्रा किन्हीं ग्रहा की
नहीं कहीं मै, कहीं नहीं
स्वाहा!

यह नगी जाँघें राम रहित गोरी
नारी में धुम्रा पुरुष का अग,
अन्धेरे तहखाने म गध पसाने की,
चिकने कागज की तह से
झाँक रहा रोमाच
नहीं मै कहीं नहीं
स्वाहा!

यह भूले भटके दिन
आँखों मे कोई सूरत
खिल खिल उठते फूल
महक जा साथ चले दिन भर
सो जाए राता को कविता की सतरों में
फिर मैं नहीं कहीं
स्वाहा!

दुनिया में पैसे का नाटक
इटरव्यू का कमरा,
ज्योतिष, योगतत्र, मीमासा,
दारु, कालमार्क्स, बिल गेट्स
नहीं मैं कहीं नहीं
स्वाहा!

यह कम्प्यूटर की भाषा
विज्ञापन के नारे
रजत फलक पर चलती फिरती छायाओं के खेल

जता गील सपन
स्वाहा!

काम कर रहा ढाबे पर बच्चा
भिखमगा,
मशीन ड्राइव पर कटे बाल वाली, गोरी भरपूर जवानी
ने जो किया इशारा
सब
स्वाहा!
स्वाहा!! स्वाहा!!!

●

यज्ञ हुआ पूरा
परसाद बटा
सब चले गये
लेकिन ये अब भी सूना पड़ा
हवन का कुण्ड
अभी तक जो धधका था
प्रगट हुआ ना कोई यहाँ पर

●

दृष्टुमिच्छामि ते रूपमेश्वर!

या देवी सर्वभूतेषु
स्मृति रूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै! नमस्तस्यै!!
नमस्तस्यै!!! नमो नम:!!!!

4 जगह बदलते टीले

जितने बोए बीज सभी मर गए नहीं पानी बरसा
लिए तमन्ना लैला की मजनूँ भटका कितना तरसा

नयना के जलकण भी सूखे नीरस मन की ज्वाला मे
सरसा तो सूना मन उपवन केवल सपना में सरसा
कि उन्ला मेघ दे।

●

सपना म ही नाम सुना कोई
सपनों म नाम लिखा
सपनो म अपना थार
देखकर
सागर के सपनों का सपना देख लिया

●

फिर आँधी आई लगातार
टिक टिक करती, अनथक
बीते दिन रात
सीप का खोल बचा बस
फँसा रह गया
बीच उँगलियों के जब
रेत फिसलकर गिरने लगी
रेत के सागर म

●

तप रही जमीन पर
चले नगे पाँव
जाना था हम पैदल
हमारे गाँव

●

रेत को मालूम होगा नाम
चेहरा घुल गया होगा
बगूला मे
कि जो उड़कर क्षितिज के पार जाते हैं
न लौटेगे
मुझे देखा किसी ने क्या?

•

चलती रही सड़कों पर गाड़ियाँ,
पटरियों पर पेसजर ट्रेन,
बाजार खुलते रहे
बन्द होते रहे,
लोग पैदा हुए,
मरे
कई तरह से मरे,
बिस्तर पर मरे बीमार बूढ़, अपग,
दुर्घटनाओं म जवान,
गोलियों से मरे मासूम
चाकुओं से बदमाश

नहीं मरे तो वे साबुन
जिनमे अधिक धुलाई की शक्ति है
उनके केवल रैपर बदल
नए आकर्षक पैक

•

और उन सबने अंग्रेजी मे कहा
उधार लो घी पियो
मजे मे जियो
देखो! फिर से फैशन मे है
पतली टाइयाँ

ओर मैने खरीदी उधार
एक पतली टाई
बाँधा उसे गले में
और पूछा एक सुन्दरी से
मुझे प्यार करोगी?

हा उसने कहा क्योंकि
तुम वक्त के मुताबिक
सही टाई पहने हो

नहीं काम में लेते हो
बोलते वक्त
स्प्लिट इनफिनिटिव
क्या नाम है तुम्हारा?

क्या सचमुच मैंने पूछा
नहीं उसने कहा, 'क्या फर्क पड़ता है?

●
कोई फर्क नहीं पड़ता
सचमुच
कोई फर्क नहीं पड़ता

'महात्मा गाँधी वॉज बॉर्न
एट पोरबंदर, इन गुजरात
एंड वाज किल्ड
एट डेल्ही

दिल्ली में मरे गाँधीजी
दिल्ली में बोली गई अंग्रेजी
दिल्ली में खुले बाजार
दिल्ली में मिली
और किसी को नहीं मिली
नौकरी
दिल्ली में बनाए गए सपने
दिल्ली में रेत के टीलों ने जगह बदली

फिर उसी दिल्ली में कहीं जलाया किसी ने
आरती का दीपक—
'तुम हो एक अगोचर
सबके प्राणपति
किस विधि मिलऊँ दयामय
तुमको मैं कुमति
ओम जय जगदीश हरे!

हर हर
मुरार मधुकैटभ हार
हर जन की पीर

●

जग वैसे
रेत में सागर
नहीं था
बीतना ही रुक
शब्दों का जिन्ह हम लिख रहे हैं
थाम लूँ कैसे
हवाओं को
कि शायद कोई आकर
पढ़े इनको
फिर भले ही मिट
जैसे मिट गए वे
जिन्हें हमने पढ़ लिया था।

5 रेत के गीत

मौन हवा के गहरे झोंके
एक बार रेती को छू
थम गए निपट सूने सहरा में

धोरों की धरती पर छायाएँ गहराईं
सूरज भी चुपचाप छिप गया
आसमान के परे कहीं जाकर रंग घोले
क्षितिज भर दिया
रेती को छूकर रंगों ने
कहा
'हाँ बीत रहा है कण कण
यह आकार रेत का

क्षण क्षण गढ़ा तुम्हारा जीवन
लिखा गया जिस पर है
लेकिन
कैसे तुमने मान लिया है
नहीं थम है यहाँ
पुराने व सारे व्यापार
जिन्हें नित बदल बदल कर
इस क्षण की पहचान
बनी है

●

रेत फिर रेत है जमती है तो उड़ जाती है
नाम भी नाम है लिक्खा है तो मिट जाएगा

●

रेत ही नाम है रेत ही है शकल
रेत के उड़ रहे कण ही पहचान है
रेत जैसे हवा में है भटका कर
यो ही मंजिल है उसकी यही काम है
हम वही हैं जो हमने कहा हम नहीं
हम ही समिधा हैं हम ही हैं आहुतियाँ
हम ही प्रकटे हैं आखिर हवन कुण्ड से
हमने लेकिन नहीं खुद को देखा कभी

●

नहीं, तुम नहीं हो
सुइयाँ घड़ी की,
न एक नाम मिटता हुआ
तुम बदलना भर हो धारा का
टिक टिक के बीच का एक अन्तराल
लिखा जाना, और मिटना
अनादि से अनन्त तक में
यहां से वहां तक

जिसके बिना अनादि नहीं हो सकता
अनन्त'

●

क्या करे इस रेत का कोई
कि जिसमे
बदलती लहर सुनाती है
न जाने गीत कितने
बात कहती है
कभी कुछ तो
कभी कुछ
ज्वार भाटे सी

कभी आँखे जलातीं
पलक मे घुसकर
कभी
मन शान्त करती
रूप सुन्दर धर

●

महासागर
हुआ निर्जल, मगर
सूखा नहीं शायद
कभी था।

●

थार।
मैं तुम पर नहीं हूँ कहीं
हो सकता नहीं
मिट जाऊँगा हर बार
ऊपर जब लिखूँगा नाम

मैं भीतर तुम्हारे हूँ
तुम्हारी रग हूँ
जान हूँ
नाम भर गायब हूँ।

संजीव मिश्र

9 फरवरी 1961 को जन्म। स्कूल से लेकर हिन्दी में एम ए तक की शिक्षा जयपुर में। कविताओं के अलावा कहानियाँ, व्यन्य, फिल्म व पुस्तक समीक्षाएँ तथा विभिन्न विषयों पर लेख व फीचर अनेक पत्र पत्रिकाओं में छपते रहे हैं। 1982 से 1995 तक पूर्णकालिक पत्रकारिता—दैनिक राजस्थान पत्रिका और बाद में दैनिक नवभारत टाइम्स में। 1995 के बाद से स्वतंत्र लेखन। देश विदेश के टीवी प्रोडक्शनों के साथ फ्रीलान्सर के बतौर काम किया। आकाशवाणी व दूरदर्शन के कार्यक्रमों में हिस्सा लिया। विज्ञान फंतासी जासूसी कथाएँ व कॉमिक स्ट्रिप पढ़ने का शौक। सूचना तकनीक में RDBMS OOP तथा 4GUI में शौकिया ही प्रशिक्षण प्राप्त किया।

इन दिनों लेखन व अनुवाद आदि कार्य। अब तक प्रकाशित पुस्तकें कुछ शब्द जैसे मंत्र (कविता संग्रह) गार्डन पार्टी (कैथरीन मेन्सफील्ड की कहानियों के अनुवाद) पैट्रीशिया कीनी की कविताएँ (अनुवाद)। सभी पुस्तकें वाग्देवी प्रकाशन से प्रकाशित।

लहर भर समय